Volume-08
Issue-01
January-2021

ISSN: 2349-7637 (Online)
RESEARCH HUB International Multidisciplinary Research Journal
https://rhimrj.co.in/ [Peer-Reviewed Journal]

मार्कण्डेय के कहानी साहित्य में चित्रित ग्राम्य–जीवन एवं आर्थिक परिवेश : सामान्य विश्लेषण

अरविन्द कुमार शर्मा

शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 15 January 2021

Keywords
ग्राम्य जीवन, आर्थिक परिवेश, सामाजिक असमानता, शोषक वर्ग।

ABSTRACT

आजादी के बाद इसी आर्थिक विषमता को नष्ट करने के उद्देश्य से सरकारी स्तर पर जमींदारी उन्मूलन, पंचवर्षीय विकास योजनाएँ, सामुदायिक विकास योजनाएँ, कुटीर उद्योग, पंचायत, चक–बंदी. भूदान, सहकारी खेती, कृषि विकास आदि अनेक प्रभावशाली नवीन आर्थिक कार्यक्रमों की घोषणाएँ हुई। ये कार्यक्रम कार्यान्वित भी हुए, परंतु इसका परिणाम यह हुआ कि गाँवों की आर्थिक स्थिति सुधरने के बजाय और भी बिगड़ती गई। गाँवों में स्थित किसान और भूमिहीन मजदूर वर्ग का जीवन यथास्थिति बना रहा। गरीबी, अभाव और भुखमरी बढती गई। सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ बढ़ने लगीं। सामाजिक स्वास्थ्य खतरे में पड़ा। इस सबका प्रतिबिंब तत्कालीन कहानी साहित्य में पड़ना स्वाभाविक था। अतः कतिपय लेखकों के साहित्य में उक्त विसंगतियाँ कमोबेश चित्रित हुई मार्कण्डेय चूँकि ग्राम चेतना से जुड़े कहानीकार हैं, उन्होंने अपनी अनेक कहानियों में उपर्युक्त आर्थिक कार्यक्रमों के आलोक में भारत के गाँवों की आर्थिक बदहाली का बड़ा ही सजीव और मार्मिक वर्णन किया है। विशेषतया उनके भूदान' संग्रह की कहानियाँ इसी एक समस्या को केंद्र में रखकर लिखी गई हैं। मार्कण्डेय की कहानियों में चित्रित आर्थिक समस्या को निम्नांकित उपशीर्षकों में रखकर देखा जा सकता है।

शोध विस्तार– भारतवर्ष की अधिकांश जनता आज भी गाँवों में ही रहती है। यही कारण है कि हमारी अर्थव्यवस्था बड़ी हदतक गाँवों पर ही अवलंबित है और गाँवों की अर्थव्यवस्था का मूल आधार है– खेती या कृषि परंतु भारतीय गाँवों का इतिहास यही बताा है कि सदियों से वहाँ की कृषि और तत्सम साधनों पर जमींदारों की सत्ता रही है। नतीजा यह कि भारत का सामान्य ग्रामीण सदियों से केवल श्रम करने का अधिकारी रहा है। उत्पादन पर हक हमेशा से जमीदार साहूकारों का ही रहा है। यों जमीदारों के शोषण और उत्पीड़न का शिकार सामान्य ग्रामीण निरंतर गरीबी, दरिद्रता, अभाव, टूटन, भग्नाशा को ही अनुभव कर रहा है। जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक विषमता, ग्रामीण जीवन की एक विकट समस्या बनी हुई है।[1]

आजादी के पश्चात देश में समता नाम पर जमींदार उन्मूलन की विधिवत घोषणा की गई. जिसे पढ़कर तथा सुनकर शुरू में गाँवों में हर्ष और उत्साह का छा जाना स्वाभाविक था परंतु ग्रामीणों का यह उत्साह बहुत जल्दी निराशा में बदल गया। क्योंकि असल में जमींदार का केवल संबोधन बदला था। अब राजनेता के रूप में वह गाँव की जनता का भाग्यविधाता बने रहने का नाटक रचाता है, पर असल में जमींदार और अभावग्रस्त दीन हीन किसान के बीच का फासला वैसा ही बना रहा। कानूनी अधिकार समाप्ति के कारण स्वातंत्र्योत्तर काल में इन जमींदारों ने तिकडम का मार्ग अपनाया और अपना शोषक का दानवी रूप कायम रखा। मार्कण्डेय की कल्यानमन कहानी की मंगी एक बूढ़ी स्त्री है। आजादी मिलने तथा जमींदारी उन्मूलन के बाद मंगी को अपने कल्यानमन पोखरे (तालाब) पर अधिकार तो मिल गया परंतु जमीदार की तिकड़म के आगे वह पड़ा रह गया। कहानी में अंत में मंगी का कौन जाने मेहमान अब भी फन काढ़े बैठे हों, कल्यानमन जो लेना है उन्हें कथन जमींदारी टूटने के बावजूद जमीदारों के बरकरार शोषक रूप पर एक मार्मिक व्यंग्य है। डॉ. रंजना शर्मा के अनुसार, इस कहानी में शोषक वर्ग (जमींदार) का काइयाँपन और उसके फलस्वरूप मंगी का आत्मघाती निर्णय बहुत स्वाभाविक लगता है। दोनों वर्गों की टकराहट तनिक भी आरोपित न होकर रचना की माँग लगती है। ''मार्कण्डेय यह दर्शाते हैं कि स्थितियों की जो समझ अपने अनुभवों के फलस्वरूप मंगी को है, वह युवा पुत्र को नहीं है। मंगी को दुख है कि सुराजी लोग नहीं देखते कि मेहनत कोई और करता है और लाभ कोई और उठाता है– ''अँखिया तो फूट गई है सुरजियन की, कि यह अन्हेर भी नहीं देखते। खेती चमरू करेगा. परताल ठाकुर के नाम से होगी। बीच में पटवारी इधर से भी खाएगा, उधर से भी खाएगा। अब तो बेभूँय का किसान खाद हो गया है. खाद बस वह खेत बनाता है।' मंगी का यह कथन मौजूदा कृषि–संबंधों पर कठोर टिप्पणी है और इससे स्पष्ट होता है कि उत्पादनों के साधनों पर जिनका कब्जा पहले से चला आ रहा है, वे ही आज भी बिना श्रम किए सारे सुख भोग रहे हैं।[2]

मार्कण्डेय के 'भूदान' में संगृहीत 'उत्तराधिकार' कहानी का योगेश राव ऐसा ही पात्र है। जिसने जमींदारी टूटने के बाद

बाजार, कारखाने तथा पशुओं के मेले आदि लगाकर लाखों रुपए कमाना आरंभ कर दिया। यही कारण है कि उसका दबाव अब भी वैसा ही बना हुआ है। अब वह कांग्रेस का एक बड़ा नेता और प्रतिष्ठित आदमी कहलाता है। लेखक ने योगेश राव के माध्यम से उस जमींदार वर्ग की वास्तविकताओं को उजागर किया है, जिनका जीवन भोग–विलास में डूबा है। मार्कण्डेय के अंतिम कहानी संग्रह 'बीच के लोग' की शीर्षक कहानी भी जमींदारी व्यवस्था के शोषक रूप पर प्रकाश डालती हैं। 'बीच के लोग' कहानी का फउदी दादा आजादी के पूर्व का जमींदार और आज का बिचौलिया है, जो अप्रत्यक्ष रूप से शोषण की परंपरा को जस की तस बनाए रखना चाहता है।[3]

देश आजाद होने के बाद गाँवों के आर्थिक विकास के लक्ष्य को सम्मुख रखकर पंचवर्षीय आदि अनेक सरकारी योजनाओं का बनना स्वाभाविक था और ऐसा हुआ भी। पंचवर्षीय योजनाएँ, सहकारिता, चकबंदी, भूदान, कुटीरोद्योग जैसी अनेक योजनाएँ अस्तित्व में आईं और गईं लेकिन असल में आम किसान और भूमिहीन मजदूर की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। मार्कण्डेय की 'दौने की पत्तियाँ', 'आदर्श कुक्कुटगृह' आदि कहानियाँ सरकारी योजनाओं पर मार्मिक व्यंग्य करते हुए उनकी असली सूरत को बेनकाब करती है। 'आदर्श कुक्कुटगृह' के बसावन और रमजान के रूप में भोले–भाले ग्रामीण कुक्कुटगृह को लेकर नए–नए सपने देखने लगते हैं, किंतु उन्हे यह कहाँ पता है कि भ्रष्ट सरकारी अधिकारी–वर्ग के कारण यह संभव नहीं।

''आदर्श कुक्कुटगृह जैसी कहानियों से स्पष्ट होता है कि आजादी के बाद शोषण का एक आयाम अमला तंत्र और मुखर हुआ है। ऐसा नहीं कि पहले पटवारी दरोगा आदि किसान और मजूर का शोषण नहीं करते थे। लेकिन आज शोषण का तर्क और ढंग बदल गया। गाँव और गाँववासियों के विकास के नाम पर बननेवाली योजनाएँ कितनी पोली और दिखावटी हैं, यह 'आदर्श कुक्कुटगृह से प्रमाणित होता है।''

आदर्श कुक्कुटगृह के रमजान और दौने की पत्तियों के भोला की स्थितियाँ एक जैसी हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में गाँव में नहर आई तो गाँव के शीर्षस्थ प्रतिष्ठित तिवारी के खेत पर आकर काम रुक गया। वोट दे दिलाकर जिताए गए मिनिस्टर की सिफारिश और इंजीनियर को एक हजार के साथ मुर्रा भैंस का अकोर देकर तिवारी ने अपने खेत से नहर मुड़वा दी और भोला कोइरी के उस एकमात्र संपूर्ण खेत से नहर निकलवा दी, जिसे पाँच वर्ष में आधे पेट रहकर उसने खरीदा था और जिसे लेकर उसके तथा उसके बालबच्चों की जीविका के सपने थे। योजना– विकास के परिप्रेक्ष्य में भ्रष्टाचार के ऐसे उदाहरण अपवाद नहीं हैं और भोला कोइरी जैसे कोटि–कोटि दीन–हीन जन–स्वातंत्र्योत्तर विकास के रथ–चक्रों में पिस गए हैं। उनके पास उत्कोच के लिए धन–दौलत तो क्या अपने लिए दौने की पत्तियाँ भी नहीं रह गई।'''' चाँद का टुकड़ा ग्रामीणों की जर्जर आर्थिक स्थिति और सरकारी विकास योजनाओं में रोजगार तलाशते ग्रामीणों के जीवन की विसंगतियों पर मार्मिक और बेझिझक टिप्पणी करती है। मार्कण्डेय की 'मधुपुर के सिवान का एक कोना हल लिए मजूर चांद का टुकड़ा कहानियाँ भी सरकारी योजनाओं की विफलता को विभिन्न संदर्भों में व्यक्ति करती हैं।[4]

गाँव तथा वहाँ के किसान मजदूरों के आर्थिक विकास को लक्ष्य कर कार्यान्वित किए गए सरकारी कार्यक्रमों में सहकारिता और चकबंदी का विशेष महत्व है। सहकारिता और चकबंदी को 'सफल संभव प्रगतिशील' आर्थिक कार्यक्रम भी कहा गया है। परंतु भारत का यह कटु यथार्थ है कि यहाँ सरकारी योजनाओं और उनके व्यावहारिक पालन में हमेशा दरार ही दिखाई पड़ी है। यहाँ पर योजनाओं का पालन मात्र कागज पर होता है या फिर उन्हें विकृत बनाकर जनता के सम्मुख लाया जाता है। परिणाम यह होता है कि आम ग्रामीण आदमी विकास से वंचित ही रह जाता है। सहकारिता और चकबंदी के कार्यक्रमों का भी यही हश्र हुआ। रिश्वतखोरी और राजनीतिक पहुँच के कारण इसका सर्वाधिक लाभ बड़े किसानों, गाँव के मुखियाओं, सरपंचों आदि को ही हुआ।

सहकारिता और चकबंदी की ही भाँति देहातों में स्थित आर्थिक विषमता के उच्चाटन हेतु आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व में भूदान आंदोलन के रूप में एक सदीच्छावादी आंदोलन का जन्म हुआ। इस आंदोलन के माध्यम से जमींदारों का मानसिक परिवर्तन या हृदय परिवर्तन करवाकर उनसे भूदान करवाने की योजना थी। असल में इस आंदोलन की परिणति भी वही हुई जो अन्य योजनाओं की हुई थी। एक तो भूदान के रूप में अत्यल्प मात्रा में जो भूमि जुटाई गई वह भूमिहीनों के कुछ काम की नहीं थी और जिनको मिली वह केवल कागज पर मिली। गरीबों को भूमि तो दूर उल्टे इस आंदोलन की आड़ में गाँवों के शोषक वर्ग ने अपना स्वार्थ ही अधिक पूरा किया। इस तरह जिस उत्साह के साथ भूदान आंदोलन का आरंभ हुआ, उसका अंत उतना ही करुण रहा। मार्कण्डेय ने उक्त आर्थिक कार्यक्रम की निस्सारता को अपनी कतिपय कहानियों के माध्यम से स्पष्ट किया है। उनके 'भूदान' शीर्षक कहानी–संग्रह की अधिकांश कहानियों के केंद्र में सरकारी विकास योजनाएँ तथा आर्थिक कार्यक्रमों की निस्सारता ही है। उनकी भूदान' शीर्षक कहानी इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है।[5]

भूमि अर्थात जमीन और उससे जुड़ा ग्राम–जीवन मार्कण्डेय की कहानियों की आत्मा है। यह निर्विवाद है कि देश की अर्थव्यवस्था ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर अवलंबित है। ऐसी स्थिति में किसी भी ग्रामीण समस्या को भूमि से भिन्न रखकर नहीं देखा जा सकता। आजादी के बाद भूमि से जुड़े भूमि सुधार आदि आंदोलन का उद्देश्य निश्चय ही उदात्त था, परंतु उनका भी वही हश्र हुआ जो अन्य आंदोलनों का हुआ। देशी सत्ता के सूत्र पूंजीवादी ताकतों के हाथ जाने के कारण असमान भूमि वितरण की समस्या और अधिक भयावह बनती गई। परिणामतः छोटा किसान भूमिहीन और दरिद्र बनता गया। आर्थिक विषमता और विकराल बनती गई। यही कारण है कि स्वातंत्र्योत्तर

ग्राम–कथाकारों के कथा–साहित्य का मुख्य स्वर इसी आर्थिक असमानता के विरोध का है। जहाँ तक मार्कण्डेय का सवाल है उनकी पैनी निगाहों ने यूँ तो गाँव की धरती को उसकी सारी समस्याओं के साथ प्रस्तुत किया है, किंतु गाँवों के सामंती ढाँचे से सीधी जुड़ी हुई जो भूमि और भूमि–संबंधों की समस्या है, वह उनकी कहानियों में प्रमुख बनकर उभरी हैं। ये कहानियाँ गहराई पर जाकर इस एक तथ्य को पूरी अहमियत के साथ उभारकर सामने लाती हैं कि आजादी के इतने अर्से बाद भी इस समस्या का कोई कारगर हल नहीं निकला। कानून भले ही पास हुए हो, सदिच्छावादी आंदोलन भी भले ही सरकारी प्रचार तंत्र की सहायता से सुर्खियों में आए हों, गाँवों की प्रधान समस्या आज भी भूमि के असमान असंतुलित वितरण की समस्या है। इसी के साथ जुड़ी बंधुआ मजदूरों, खेत मजदूरों की समस्या है, जो अपना सही हल माँगती है।[6]

'दौने की पत्तियाँ' भी भूमि से जुड़ी समस्या को उकेरने वाली एक चर्चित कहानी है। इस कहानी में देश की पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत बनाई जानेवाली नहर जब भोला के खेत में से जाकर उसका सारा खेत नष्ट होता है तब भोला और उसकी पत्नी के मधुर सपने बिखर जाते हैं। परिणमतः भोला पागल हो जाता है। 'भूदान' कहानी के नाम से स्पष्ट है कि यह भूमि के समान वितरण और भूमिहीनों को भूमि दिलवाने के लिए चलाए गए भूदान आंदोलन पर मार्मिक व्यंग्य है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कथा नायक रामजतन भूदान की आशा में अपनी खुद की थोड़ी–सी जमीन भी खो देता है। सहज और शुभ कहानी–संग्रह की मधुपुर के सिवान का एक कोना भी भूमि के अभाव में जमींदारों के द्वारा होनेवाले शोषण पर केंद्रित रचना है। यह कहानी भी भूमि–संबंधों की समस्या को प्रखरता से व्यक्त करती है। बादलों का टुकड़ा महाजन के कर्ज के बोझ तले संघर्षरत एक भूमिहीन किसान की करुण कहानी है। भूमि और मजदूरी के अभाव में इस किसान का पूरा परिवार भूख से लड़ता प्रतीत होता है। उसका बालक कुनाई भुखमरी का शिकार होकर जिंदगी और मौत की लड़ाई लड़ रहा है। किसान पेट में लगातार मरोड़ से त्रस्त है तो उसकी पत्नी जसमा महाजन और उसके कारिंदे की कुदृष्टि से बचते हुए उन्हीं के यहाँ श्रम करने को मजबूर दिखाई देती है। कुल मिलाकर भूमि के अभाव में पूरा परिवार भूख और गुलामी की जिंदगी जीने को विवश है। सुरेंद्र चौधरी के शब्दों में, बादलों का टुकड़ा महज सामाजिक संदर्भ की पहचान की कहानी नहीं है। वह इससे आगे बढ़ी हुई संघर्षशील चेतना की कहानी है। कर्ज से पीड़ित मजदूर–किसानों का जीवन और उसकी शिद्दतें। मगर उनकी अपराजेय आत्मा संघर्ष से कभी विमुख नहीं होती। वह टूट जाती है पर पराजित नहीं होती।' संदेहवाद के मायावी रूपों पर यह एक खुली चोट है।[7]

मार्कण्डेय के अंतिम और चर्चित कहानी–संग्रह 'बीच के लोग' की शीर्षक कहानी भी भूमि–समस्या को केंद्रित करके लिखी गई है। कहानी का वृद्ध किसान बुझावन वर्षों से ठाकुर हरदयाल का खेत जोतता है। ठाकुर की हलवाही ही बुझावन की जीविका का एकमात्र अवलंब है, किंतु अब ठाकुर वही खेत महाजन को बेच रहा है। इसके लिए महाजन ने ठाकुर को घूस भी दे रखी है। महाजन ने उस खेती में पंपिंग सेट बिठाकर चक्की का व्यापार करने की योजना बनाकर रखी है। इस प्रकार अपनी जीविका का एकमात्र आधार नष्ट होने के संकट से भूमिहीन बुझावन भयभीत है। किंतु उसे फउदी दादा पर पूरा भरौसा है, जो गाँव के प्रतिष्ठित आदमी हैं। इसलिए फउदी से मिलकर उसके सामने गिड़गिड़ाते हुए बुझावन कहता है– ''चाहो तो लगान बढ़वा दो लेकिन सहुआ के खेत लिखने से तो बिनास हो जाएगा।''[8] फउदी उन बिचौलियों के प्रतिनिधि है, जो घोषित रूप से ठाकुर बिरादरी के हैं। ये बिचौलिए गांधीवादी उदारता के भेस में भूमि के लिए संघर्षरत ग्रामीण जनता की चेतना को कुंठित करने में सक्रिय रहे हैं। इस कहानी में समाज के बिचौलियों पर ध्यान केंद्रित करके मार्कण्डेय उस तथ्य को उद्घाटित करते हैं, जिसके अधीन संघर्षशीलता को बढ़ने से रोका जाता है।" किंतु भोला–भाला वृद्ध बुझावन इस बात से अनजान है। उसे नहीं पता कि अंततः फउदी हरदयाल का ही पक्ष लेगा। दूसरी ओर बुझावन का जवान बेटा मनरा बिना किसी औपचारिक शिक्षा या मार्गदर्शन के इस बात को भली–भाँति जानता है कि वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था में किसी भी न्याय की आशा करना बेकार है। मनरा सरकारी तंत्र और पूंजीपतियों की असलियत को अपने बाप से अधिक जानता है। इसलिए फउदी जैसे बिचौलियों की बातों में न आते हुए शोषक–अत्याचारियों से दो हाथ करने की तैयारी करता है।[9]

इस प्रकार सन 1954 में प्रकाशित मार्कण्डेय के प्रथम कहानी संग्रह पान फूल की सवरइया' कहानी से लेकर सन 1978 की हल लिए मजूर और जनवरी 1997 के स्वाधीनता, शारदीय विशेषांक में प्रकाशित कहानी जीने की राह तक में भूमि समस्या केंद्रीय और प्रमुख समस्या रही है। जीने की राह के माध्यम से एक बार फिर मार्कण्डेय यह दिखलाना चाहते हैं कि अनेक सरकारों के बाद भी भूमि से जुड़ी यह बुनियादी समस्या आज भी हल नहीं हुई है। देश का ग्रामीण उसी फटेहाल जिंदगी को भोग रहा है। हर शासन–व्यवस्था पूंजीवादी और दबाव तंत्र अपनाने वाले लोगों के इशारों पर चलती है।

'चाँद का टुकड़ा' भी गाँवों की निर्धनता या गरीबी की समस्या को उठानेवाली एक और मार्मिक कहानी है। 'घुन' कहानी में एक ओर दुर्भिक्ष के दरमियान जोखू महाजन की जमाखोरी और दूसरी ओर उसके दुष्परिणामों को भोगते ग्रामीणों की आर्थिक दुरावस्था का मार्मिक चित्रण हुआ है। गाँव के किसान हो या मजदूर। सभी कर्ज के बोझ से झुके हुए हैं। किसी पर जमींदार का कर्ज है, तो किसी पर महाजन का और किसी पर बनिए का। फिर भी ये सभी जीना चाहते हैं। 'बादलों का टुकड़ा' कहानी की जसमा और उसका पति जमीन और काम के अभाव में भी जीवित रहने के लिए प्रयत्नशील हैं। उनकी जिजीविषा पाठक को अचंभित करती है। घर में बीमार बच्चा जिंदगी और मौत की लड़ाई लड़ रहा है और बाहर भूख से बेहाल बकरी है। पेट की भूख मिटाने हेतु ''लपसी की धोवन के ऊपर खाली पानी का एक पूरा लोटा लेने के बाद भी, महाजन के कर्ज में उसकी

बकरी जबरदस्ती खोल ली जानेवाली ऐसी द्रावक विवशता है जो बकरी खोले जाने की स्थिति में उसे (जसमा का पति) और भी जड़ और संज्ञाहीन बनाकर छोड़ देती है। लेकिन मार्कण्डेय की यह कहानी ऐसी किसी विवशता और निरुपायता में ही खत्म नहीं हो जाती है।

निष्कर्ष– निर्धनता गाँवों का सबसे बड़ा अभिशाप है। गरीबी वहाँ की पहली और प्रमुख समस्या रही है। यही कारण है कि रचना के स्तर पर ग्राम–जीवन को चित्रित करने वाले हर कथाकार ने गरीबी की समस्या को उठाया है। फणीश्वरनाथ रेणु, रामदरश मिश्र, धर्मवीर भारती, भैरव प्रसाद गुप्त, शिवप्रसाद सिंह, विवेकी राय आदि का कथा साहित्य इसका प्रमाण है। आजादी के पहले भारतीय गाँवों की गरीबी का कारण विदेशी शासक और सत्ता थी, परंतु आजादी के बाद गरीबी के जिम्मेदार देशी सत्ता और उसके सूत्रधार ही हैं। यह कटु सत्य है। जहाँ तक मार्कण्डेय का सवाल है वे घोषित रूप से ग्राम–कथाकार है। उन्होंने गाँवों की अन्य प्रमुख समस्याओं के साथ–साथ गरीबी का भी मर्मस्पर्शी पर चित्रण किया है। उनकी अनेक कहानियों से यही ध्वनित होता है कि आजादी के बावजूद गाँव की जनता गरीबी और दुःख के अभिशाप को झेल रही है। गरीबी और अशिक्षा के कारण ग्रामीण जनता अंधविश्वासों और रूढ़ियों का शिकार होती रहती है। गरीबी गाँवों का मानो संस्कार बन गई है।

संदर्भ सूची–

1. डॉ. सुरेन्द्र कुमार, मार्कण्डेय रचना संसार, पृ. 20
2. डॉ. रंजना शर्मा, नई कहानी, प्रतिनिधि हस्ताक्षर, पृ. 122
3. मार्कण्डेय, भूदान, पृ. 267
4. डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ, नई कहानी, प्रतिनिधि हस्ताक्षर, पृ. 122
5. डॉ. विवेकीराय, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा–साहिय और ग्राम–जीवन, पृ. 194
6. डॉ. देवी शंकर अवस्थी, नई कहानी, संदर्भ और प्रकृति, पृ. 197
7. डॉ. शिवकुमार मित्र, दर्शन, साहित्य और समाज, पृ. 184
8. मार्कण्डेय, बीच के लोग, पृ. 60
9. मार्कण्डेय सारिका 16 अक्टूबर, 1978, पृ. 20